■ विविधा

अगर आपकी जींस बोल सकती...

शिशिर

दोस्तो, क्या आपने कभी सोचा है कि जो कपड़े पहनकर आप रोज कालेज जाते हैं, उन्हें कौन बनाता है? क्या आपको मालूम है कि आपकी 'धांसू' जींस की सिलाई 12-13 साल के बच्चों ने की है? क्या आपको अंदाजा है कि आप स्मार्ट बनकर घूम सकें, इसके लिए कितने बचपनों की कुर्बानी दी गई है? अगर आपकी जींस बोल सकती तो आपको यह सब बताती।

क्या आपने अपनी जींस में आती बच्चों के खून और आंसुओं की गंध महसूस नहीं की है? लेकिन वह गंध आप तक कैसे पहुंचेगी? आंसू और खून तो सिक्कों में ढलकर बड़ी-बड़ी कम्पनियों के बैंक खातों में जमा हो चुके हैं।

'भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर में कपड़ा उद्योग का नेटवर्क भी भूमंडलीय हो चुका है। अमेरिकी गारमेंट कम्पनियों में अमरीका में 8 लाख से ज्यादा मजदूर काम करते हैं जबकि तीसरी दुनिया के गरीब देशों में सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से 5 लाख मजदूर इन कम्पनियों के लिए काम करते हैं। सिले-सिलाये वस्त्रों की फैक्टरियों में बड़ी संख्या में मजदूरों की जरूरत होती है क्योंकि बड़ी-बड़ी आटोमेटिक मशीनें या कम्प्यूटर आपकी जींस और टी-शर्ट नहीं सिल सकते। इसके लिए जरूरत पड़ती है औरतों और बच्चों की। बड़े-बड़े शेडों में ये सिलाई मशीनों पर झुके हुए 10-10, 12-12 घंटे काम करते रहते हैं। कोई कटिंग करता है, कोई सिलता है, कोई बटन लगाता है, कोई पूरे दिन खड़े रहकर धागे काटता रहता है, कोई काज बनाता है तो कोई इस्त्री करता है। कई हाथों से गुजरकर एक जींस या शर्ट तैयार होती है। चमकदार शोरूमों में कई सौ रुपये में बिकने वाले इन कपड़ों की सिलाई के लिए मुश्किल से 4-5 रुपये प्रति पीस की मजदूरी मिलती है। बड़ी कम्पनियां मुनाफे की हवस में सस्ते से सस्ता श्रम ढूंढने में लगी रहती हैं। नतीजतन चाहे ताइवानी कम्पनी गैप हो, अमेरिकी कम्पनी केथी ली, लेवी, हैगर, वालमार्ट या रीबॉक हो, जर्मन कम्पनी एडिडास या फिर फ्रेंच कम्पनी पियर कार्डिन हो—इनकी अधिकांश फैक्टरियां अलसल्वाडोर, मेक्सिको, ब्राजील, ग्वाटेमाला, कोलम्बिया, हाइती, होण्डुरास, बंगलादेश और भारत में हैं।

अगर आपकी जींस बोल सकती तो वह आपको बताती कि इन फैक्टरियों में जिस बर्बरता के साथ 15-16 साल की बच्चियों और महिलाओं का शोषण-उत्पीड़न किया जाता है वह रोमन और यूनानी साम्राज्य के गुलामों की याद दिला देता है। अमेरिका में खूब बिकने वाले कैथी ली कम्पनी के कपड़ों को लातिनी अमेरिका में जानलेवा हालात में काम करने वाले बच्चे बनाते हैं। अंधेरी घुटनभरी फैक्टरियों में पसीने से नहाये हुए ये बच्चे 18 से 20 घंटे तक काम करते हैं जहां उन्हें साफ पानी तक पीने को नहीं मिलता और न ही वे दिन में दो बार से ज्यादा टायलेट जा सकते हैं। अकसर काम करते-करते 13-15 साल के ये बच्चे बेहोश होकर गिर जाते हैं। कम्पनियों के ठेकेदार सस्ते से सस्ता श्रम को बेरहमी से निचोड़ लेने के लिए मजबूर-बेबस लोगों की ताक में लगे रहते हैं। थोड़ा बड़ा होते ही इन बच्चों को निकाल बाहर किया जाता है।

मजदूरों के एक क्रान्तिकारी अखबार 'बिगुल' की एक रिपोर्ट के अनुसार नोएडा के एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन में एक बड़ी गारमेंट कम्पनी की फैक्टरी में काम करने वाली एक मजदूर ने बताया कि उसे रोज 10-11 घंटे काम करने के बदले महीने में 900 रुपये मिलते हैं। हफ्ते की छुट्टी तक नहीं मिलती है।

इसी तरह अमेरिका से प्रकाशित 'रिवोल्यूशनरी वर्कर' अखबार की एक रिपोर्ट में वेंडी नाम की 15 वर्षीय मजदूर लड़की ने बताया कि वह कैथी ली कम्पनी की फैक्टरी में हर रोज 13 घंटे काम करती है जिसके लिए उसे 21.86 डालर प्रति हफ्ता मिलता है। ओवरटाइम करने से मना करने पर उस पर यौन शोषण और पिटाई की धमकी दी जाती है। उसे बीमार होने पर भी छुट्टी नहीं दी जाती और गैरहाजिरी के पैसे कट जाते हैं।

यदि आपकी स्मार्टनेस में चार चांद लगाने वाली टी-शर्ट बोल सकती तो वह आपको बताती कि ये तो मामूली उदाहरण हैं। मशहूर से मशहूर लेबल वाली और अरबों डालर विज्ञापनों में फूंक डालने वाली कम्पनियां जोंकों की तरह बच्चों और औरतों का खून चूसकर अपना मुनाफा पैदा करती हैं।

अगर आप अपनी इम्पोर्टेड कोरियन जींस की आवाज सुन पाते तो वह बताती कि एक कोरियाई गारमेंट फैक्टरी में 15 घंटे की सामान्य शिफ्टें होती हैं (जो 14-14 साल की बच्चियों को भी करनी पड़ती हैं) और हर शनिवार को मजदूर 7.30 बजे सुबह फैक्टरी आते हैं और रविवार को सुबह 6 बजे बाहर निकलते हैं। यानी साढ़े बाइस घंटे की शिफ्ट।

यदि आपको अपनी जींस की कही बातों

(शेष पृष्ठ 17 पर)

विज्ञापनों ने पैदा किया जुनून
जींस के लिए हत्या, जूतों के लिए आत्महत्या

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सिर्फ मजदूरों का खून ही नहीं पीतीं, अपने नये-नये फैशनेबुल कपड़ों और जूतों को बेचने के लिए वह विज्ञापनों के जरिए ऐसा दिमागी बुखार पैदा करती हैं कि लोग उन्हें पाने के लिए कुछ भी करने पर आमादा हो जाते हैं।

पिछले दिनों लंदन में 18 वर्षीय एक नौजवान 150 फीट ऊंचे पुल पर चढ़ गया। वह कह रहा था कि अगर उसे रीबॉक कम्पनी के नये मॉडल के शानदार स्पोर्ट्स शूज़ नहीं दिये गये तो वह नदी में कूदकर जान दे देगा। घंटों चले नाटक के बाद उसे जूते लाकर दिये गये जिन्हें पहनकर ही महाशय नीचे उतरे।

नये-नये माडलों-फैशनों के लिए पागलपन (क्रेज) पैदा करने के वास्ते विज्ञापनों पर अरबों डालर बहाये जाते हैं। फिल्मों से लेकर खेलों की दुनिया के सितारों को करोड़ों डालर में खरीदा जाता है। पैसे वालों के लाडले इन्हें पहनकर अपने वैभव का उद्दण्ड नुमाइश करते घूमते हैं और ऐसे "स्टेटस सिम्बलों" के पीछे पागल मध्यवर्ग अपना पेट काटकर इन्हें खरीदता है। इन कपड़ों-जूतों के लिए समाज में ऐसी हवस पैदा की जाती है कि लोग इन्हें पाने के लिए अपराधी तक बन जाते हैं। गुजरे वर्षों में अमरीका में सिर्फ महंगी जींस या जूते पाने के लिए कई लोगों की हत्या कर दी गई।

जो समाज पतलून और जूते जैसी चीजों के लिए हत्या और आत्महत्या तक पहुंचा देने वाली संस्कृति रच रहा हो, उसकी उम्र ज्यादा लम्बी नहीं हो सकती।

चुकी थी, अब इसका सबसे नंगा और सबसे गंदा रूप हमारे सामने है।

वह जलता हुआ प्रश्न जो हमारी आंखों में झांक रहा है!

एक नई क्रान्ति का प्रबल झंझावात ही इस नर्क से हमें उबार सकता है। इसके लिए, जैसा कि भगतसिंह ने जेल की कालकोठरी से संदेश दिया था, नौजवानों को आगे आना होगा और क्रान्ति की स्पिरिट को ताजा करने के लिए कुर्बानी की भावना से ओतप्रोत होकर आना होगा। उन्हें "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज" करनी होगी, यानी आज की परिस्थितियों का, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का अध्ययन करना होगा, क्रान्ति के विज्ञान का अध्ययन करना होगा और इतिहास का भी। फिर उन्हें कारखानों और गांवों तक क्रान्ति का संदेश लेकर जाना होगा और जनता को संगठित करना होगा।

फांसी से तीन दिन पहले भगतसिंह ने लिखा था : "**हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तबतक चलती रहेगी जबतक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है—चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है।**"

यही संदेश आज एक-एक जीवित हृदय तक पहुंचाना है कि यह लड़ाई आज भी जारी है और यह आज एक ऐसे मुकाम पर पहुंच चुकी है जब पूंजीवादी सत्ता पर फैसलाकुन चोट की जा सकती है।

पर कोई भी सामाजिक क्रान्ति अपने-आप सम्पन्न नहीं होती। निश्चित, सचेतन तैयारी के बिना बीच-बीच में विद्रोह तो होते रह सकते हैं, पर ऐसी क्रान्ति नहीं हो सकती जो नई सामाजिक व्यवस्था के जन्म में धाय का काम करती है।

शहीदे-आजम भगतसिंह ने जिस आजादी का सपना देखा था, उसे पूरा करने के लिए उन्होंने फांसी की कालकोठरी से युवाओं का आह्वान किया था। पूंजीवादी शासन के रूप में मिली अधूरी, खण्डित, विकलांग आजादी की आधी सदी के दुखदाई सफरनामे के बाद भी क्या नौजवानों की यह पीढ़ी उस सपने को यथार्थ में बदलने के लिए तैयार नहीं है? —यह जलता हुआ प्रश्न आज हमारी आंखों में झांक रहा है।

सपने अपनेआप पूरे नहीं होते। उन्हें सिर्फ पालने से भी कुछ नहीं होता। सपनों से सिर्फ शुरुआत होती है। सपने अंत नहीं। आने वाले दिनों के ऐतिहासिक तूफान को एक निश्चित दिशा देकर सामाजिक क्रान्ति में रूपान्तरित करने के लिए हमें आज ही से तैयारियों में जुट जाना होगा।

"एक सपने को टालते रहने से
क्या होता है ?
क्या वह सूख जाता है
किशमिश सा धूप में ?
या जख्म सा पक जाता है
और फिर रिसा करता है ?
.....
मुमकिन है वह सिर्फ लच जाता हो
भारी बोझे जैसा।
कहीं वह बारूद-सा फट तो नहीं पड़ता ?"
(लैंग्स्टन ह्यूज)

● सत्यम वर्मा

भगतसिंह के लेखों के संकलन **'विचारों की सान पर'** का सम्पादकीय

अगर आपकी जीन्स बोल सकती...

(पृष्ठ 41 का शेष)

पर भरोसा न हो तो दिल्ली के गोविन्दपुरी और नोएडा के एनईपीजेड में जाकर खुद अपनी आंखों से देख सकते हैं। हर औद्योगिक क्षेत्र हजारों बचपनों, अनगिनत सपनों-उम्मीदों की कत्लगाह है। देश की बर्बर सत्ता एक ओर तो बाल मजदूरों की दुर्दशा पर आंसू बहाती है और दूसरी ओर फ्लाइंग मशीन, ली, हैगर, गैप, किलर और वांटेड जैसे देशी-विदेशी भेड़ियों को बच्चों के सस्ते श्रम की लूट-खसोट की छूट देने के लिए 'फ्री ट्रेड जोन' और 'एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन' बनवा रही है।

यह सवाल बरबस ही दिमाग में उठता है कि इस लुटेरे तंत्र को खत्म किये बिना क्या "बचपन बचाया" जा सकता है?

मुनाफे की हवस में पागल इन वहशियों को किसी भी तरह सस्ता श्रम चाहिए। और इसके लिए वे तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में आते हैं जहां की सरकारें बच्चों, औरतों और बदहाल, मजबूर मजदूरों के शरीर से एक-एक बूंद खून निचोड़ लेने में उनकी मदद के लिए सबकुछ करने को तत्पर रहती हैं। और फिर बेशर्मी भरे गर्व से दावा करती हैं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां रोजगार के अवसर बढ़ा रही हैं।

इन गारमेंट फैक्टरियों की यह एक झलक भर है जो रोंगटे खड़े कर देती है। अगर वाकई हमारे कपड़ों के पास जुबान होती तो काम करने के भयावह हालात, भुखमरी-कुपोषण-बीमारी से भरी जीवन स्थितियों, बालश्रम के क्रूर शोषण, गुलामों जैसे व्यवहार और मुनाफे की हवस तले रौंदे जा रहे बचपनों की कहानी सुनाते।

वे हमें बताते कि "मुक्त व्यापार" का हम तीसरी दुनिया में रहने वाले आम जनता के बेटे-बेटियों और पूरी दुनिया के मजदूरों के लिए क्या मतलब है? ●

मुनाफाखोरों के लिए मजदूरों का श्रम ही नहीं, जान भी सस्ती है

तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में बहुराष्ट्रीय वस्त्र कम्पनियों के लिए महंगे से महंगे कपड़े तैयार करने वाले मजदूरों का श्रम ही नहीं, उनकी जान भी बेहद सस्ती है।

पिछले दिनों बंगलादेश में एक गारमेंट फैक्ट्री में लगी भीषण आग में करीब 100 मजदूर जिंदा जल मरे। इनमें आधी से ज्यादा महिलाएं थीं। 200 से अधिक मजदूर जलने से घायल हुए। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के लिए विन्टवीयर तैयार करने वाली इस फैक्ट्री में रात की पाली में 700-800 मजदूर काम करते थे। मालिक रोज रात को ढोर-डांगर की तरह उन्हें भीतर बंद कर बाहर से ताला लगा कर जाता था। आग की लपटों में घिरे मजदूरों के लिए बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। वे तड़पते रहे, चीखते रहे, पर कोई उनकी आवाज सुनने वाला भी नहीं था। बहुत से मजदूरों की दम घुटने से मौत हो गई।

इससे कुछ ही महीने पहले ढाका में एक और गारमेंट फैक्ट्री की आग में 12 मजदूर मारे गये थे।

यहीं इस भयानक सच्चाई की भी याद दिला देनी चाहिए कि 26 जनवरी को गुजरात में आये भूकम्प के समय धनपतियों के लिए हीरे तराशने वाले न जाने कितने कारीगर इसलिए नहीं बच सके क्योंकि वे जिन वर्कशापों में काम करते थे उनके दरवाजों पर रात को मालिक लोग बाहर से ताला लगा देते थे।